ॐ श्री कृष्ण शरणं मम ॐ

卐 मोक्षसंयासयोग नामक अष्टदशो अध्याय 卐

ठाकुर भिम सिंह द्वारा प्रस्तुत
श्रीमद्भगवद्गीता अमृत
श्लोकों के गूढ़ रहस्यों के साथ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मोक्षसंन्यासयोग- नामक अठारहवाँ अध्याय

01-12	त्याग का विषय
13-18	कर्मों के होने में सांख्यसिद्धांत का कथन
19-40	तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख के पृथक-पृथक भेद
41-48	फल सहित वर्ण धर्म का विषय
49-55	ज्ञाननिष्ठा का विषय
56-66	भक्ति सहित कर्मयोग का विषय
67-78	श्री गीताजी का माहात्म्य

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अर्जुन उवाच संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वम् इच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन ॥१॥

अर्जुन बोले— हे महाबाहो, हे अन्तर्यामिन्, हे वासुदेव; मैं संन्यास और त्याग को तथा इनके भेद को अच्छी तरह जानना चाहता हूं. (१८.०१)

BG 18.1: Arjun said: O mighty-armed Krishna, I wish to understand the nature of *sanyās* (renunciation of actions) and *tyāg* (renunciation of desire for the fruits of actions). O Hrishikesh, I also wish to know the distinction between the two, O Keshinisudan.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस् त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

श्रीभगवान बोले— **सकाम कर्मों के परित्याग** को ज्ञानीजन 'संन्यास' कहते हैं; तथा विवेकी मनुष्य सभी कर्मों के फलों (में आसक्ति) के त्याग को 'त्याग' कहते हैं. (५.०१, ५.०५, ६.०१ भी देखें) (१८.०२)

BG 18.2: The Supreme Divine Personality said: Giving up actions motivated by desire is what the learned understand as *sanyās*. Relinquishing the fruits of all actions is what the wise declare to be *tyāg*.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

त्याज्यं दोषवद् इत्य् एके कर्म प्राहुर् मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम् इति चापरे ॥३॥

कुछ महात्मा लोग कहते हैं कि सभी कर्म दोषयुक्त होने के कारण त्याज्य हैं और दूसरे लोगों का कहना है कि यज्ञ, दान और तप त्याज्य नहीं हैं. (१८.०३)

BG 18.3: Some learned people declare that all kinds of actions should be given up as evil, while others maintain that acts of sacrifice, charity, and penance should never be abandoned.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४॥

हे अर्जुन, त्याग के विषय में अब तुम मेरा निर्णय सुनो. हे पुरुषश्रेष्ठ, त्याग भी तीन प्रकार का कहा गया है. (१८.०४)

BG 18.4: Now hear My conclusion on the subject of renunciation, O tiger amongst men, for renunciation has been declared to be of three kinds.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ५ - **यज्ञदान तपः कर्म, न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम् ॥**

यज्ञ, दान, और तपः कर्म त्याग करने के योग्य नहीं हैं, प्रत्युत उनको तो करना ही चाहिये, क्योंकि यज्ञ, दान और तप यह तीनों ही बुद्धिमानों को पवित्र करने वाले हैं ।

Actions based upon sacrifice, charity, and penance should never be abandoned; they must certainly be performed. Indeed, acts of sacrifice, charity, and penance are purifying even for those who are wise.

परिशिष्ट भाव - मनीषी का अर्थ है 'विचारशील' । जो कर्म अपनी कोई कामना न रख कर दूसरों के हित के लिये किये जाते हैं, वे कर्म **पवित्र** करनेवाले हो जाते हैं, अर्थात् दुर्गुण-दुराचार, पाप आदि मल को दूर कर के महान आनन्द देनेवाले हो जाते हैं । प्ररन्तु वे ही कर्म अगर अपनी कामना रख कर और दूसरों का अहित करने के लिये किये जायँ तो वे अपवित्र करनेवाले अर्थात् लोक-परलोक दोनों में महान दुख देनेवाले हो जाते हैं ।

Important Point – The term “Manishi’ means ‘thoughtful.’ The actions which are performed for the welfare of others, without having any selfish desire, are purifiers viz., they, having removed evils, bad conduct, and sins etc., are conducive to great bliss. But if those actions are performed to satisfy one’s own desire and to do ill of others, they cause impurity viz., cause horrid sufferings here as well as hereafter.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६ – एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्य नीति मे पार्थ, निश्चितं मत मुत्तमम् ॥

हे पार्थ ! इस यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों को तथा दूसरे भी कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये – यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है । याद रहे, कि शुभ कर्म भी निष्कामभाव होने से ही कल्याण करने वाले होते हैं ।

These activities must be performed without attachment and expectation for rewards. This is my definite and supreme verdict, O Arjun. Remember, virtuous actions performed in only selfless manner (from rewards), leads to salvation.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात् तस्य परित्यागस् तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

हे अर्जुन, कर्तव्यकर्म का त्याग उचित नहीं है. भ्रमवश उसका त्याग करना तामसिक त्याग कहा गया है. (१८.०७)

BG 18.7: Prescribed duties should never be renounced. Such deluded renunciation is said to be in the mode of ignorance.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

दुःखम् इत्येव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

सभी कर्म दुःखरूप है —— ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक कष्ट अथवा कठिनाई के भय से अपने कर्तव्यकर्म को त्याग दे, तो वह ऐसा राजसिक त्याग करके त्याग के फल को प्राप्त नहीं करता है. (१८.०८)

BG 18.8: To give up prescribed duties because they are troublesome or cause

bodily discomfort is renunciation in the mode of passion. Such renunciation is never beneficial or elevating.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कार्यम् इत्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

"कर्म करना कर्तव्य है" ऐसा समझकर, हे अर्जुन, जो नियत कर्म —— फल की आसक्ति त्यागकर—— किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है. (१८.०९)

BG 18.9: When actions are undertaken in response to duty, and one relinquishes attachment to any reward, O Arjun, it is considered renunciation in the nature of goodness.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

न द्वेष्ट्य् अकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

जो मनुष्य **अकुशल या अशुभ** कर्म से द्वेष नहीं करता तथा **कुशल** कर्म में आसक्त नहीं होता, वही सतोगुण से सम्पन्न, संशयरहित, बुद्धिमान और त्यागी समझा जाता है. (१८.१०) ।

BG 18.10: Those who neither avoid disagreeable work nor seek work because it is agreeable are persons of true renunciation. They are endowed with the quality of the mode of goodness and have no doubts (about the nature of work).

जब भगवान कह रहे हैं कि " जो मनुष्य अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता" तब वै यहाँ यह दरशाना चहते हैं कि जो अकुशल या अशुभ कर्म हैं उसे तुम मत करो यह अच्छी बात है, पर अगर तुम उसे द्वेष दृष्टी से देखोगे तो तुम्हें द्वेष के साथ सम्बंध जुड़ जायेगा जोकि पापकर्मों से भी भयंकर है । समभाव रखने में ही बुद्धिमानी है ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ११ – **न हि देहभृता शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्य शेषतः ।**
यस्तु कर्मफल त्यागी, स त्यागीत्य भिधीयते ॥

कारण कि देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं । इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही सच्चा त्यागी है – ऐसा कहा जाता है । यह श्लोक कर्मयोग की दृष्टि से कहा गया है । कर्मयोग में कर्मफल की इच्छा का त्याग होता है ।

For the embodied being, it is impossible to give up activities entirely. But those who relinquish the fruits of their actions are said to be truly renounced.
This verse has been uttered from the viewpoint of Karmyog (action). In KarmYog there is renunciation of the desire of fruit, while in Gyanyog there is renunciation of sense of the doership.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अनिष्टम् इष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्य् अत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

कर्मों के तीन प्रकार का फल — अच्छा, वुरा और मिश्रित — मरने के बाद कर्मफल में आसक्ति का त्याग न करने वालेको मिलता है, परन्तु त्यागी को कभी नहीं मिलता. (१८.१२) ।
त्यागी कर्मों में निर्लेप होने के कारण भवबन्धन से छूट जाता है ।

BG 18.12: The three-fold fruits of actions—pleasant, unpleasant, and mixed—accrue even after death to those who are attached to personal reward. But, for those who renounce the fruits of their actions, there are no such results in the here or hereafter.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

हे महाबाहो, सांख्य सिद्धान्त के अनुसार सभी कर्मों की सिद्धि के लिये ये पांच कारण — स्थूल शरीर, प्रकृति के गुणरूपी कर्ता, पांच प्राण, इन्द्रियां तथा इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवगण — बताये गये हैं, जिसे तुम मुझसे भलीभांति जानो. (१८.१३-१४) ।
तेरहवे अध्याय के पहले श्लोक को भी देखें ।

BG 18.13: O Arjun, now learn from Me about the five factors that have been mentioned for the accomplishment of all actions in the doctrine of *Sānkhya*, which explains how to stop the reactions of karmas.

BG 18.14: The body, the doer (soul), the various senses, the many kinds of efforts, and Divine Providence—these are the five factors of action.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

शरीरवाङ्मनोभिर् यत् कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तारम् आत्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्य् अकृतबुद्धित्वान् न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

मनुष्य अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा जो कुछ भी उचित या अनुचित कर्म करता है, उसके ये पांच कारण हैं. (१८.१५)
अतः जो केवल अपने आपको (अर्थात् अपने शरीर या आत्मा को) ही कर्ता मान बैठता है, वह अज्ञानी मनुष्य अशुद्ध बुद्धि के कारण नहीं समझता है. (१८.१६)

BG 18.15-16: These five are the contributory factors for whatever action is performed, whether proper or improper, with body, speech, or mind. Those who do not understand this regard the soul as the only doer. With their impure intellect, they cannot see things as they are.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर् यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल् लोकान् न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

जिस मनुष्य के अन्तःकरण में "मैं कर्ता हूं" का भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि (कर्मफल की आसक्ति से) लिप्त नहीं है, वह इन सारे प्राणियों को मारकर भी वास्तव में न किसी को मारता है और न पाप से बन्धता है. (१८.१७)

BG 18.17: Those who are free from the ego of being the doer, and whose intellect is unattached, though they may slay living beings, they neither kill nor are they bound by actions.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

कार्य का ज्ञान, ज्ञान का विषय (ज्ञेय) और ज्ञाता —— ये तीन कर्म की प्रेरणा हैं; तथा करण अर्थात् इन्द्रियां, क्रिया और कर्ता अर्थात् प्रकृति के तीनों गुण —— ये तीन कर्म के अंग हैं. (१८.१८)

BG 18.18: Knowledge, the object of knowledge, and the knower—these are the three factors that induce action. The instrument of action, the act itself, and the doer—these are the three constituents of action.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच् छृणु तान्य् अपि ॥१९॥

सांख्यमत के अनुसार ज्ञान, कर्म और कर्ता भी गुणों के भेद से तीन प्रकार के माने गये हैं. उनको भी तुम मुझसे भलीभांति सुनो. (१८.१९)

BG 18.19: Knowledge, action, and the doer are declared to be of three kinds in the *Sānkhya* philosophy, distinguished according to the three modes of material nature. Listen, and I will explain their distinctions to you.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सर्वभूतेषु येनैकं भावम् अव्ययम् ईक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य विभक्त रूप में स्थित समस्त प्राणियों में एक ही अविभक्त और अविनाशी परमात्मा को समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तुम सात्त्विक जानो. (११.१३, १३.१६ भी देखें) (१८.२०)

BG 18.20: Understand that knowledge to be in the mode of goodness by which a person sees one undivided imperishable reality within all diverse living beings.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पृथक्त्वेन तु यज् ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज् ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य विभिन्न प्राणियों के अस्तित्व में अनेकता का अनुभव करता है, उस ज्ञान को तुम राजसिक समझो. (१८.२१)

BG 18.21: That knowledge is to be considered in the mode of passion by which one sees manifold living entities in diverse bodies as individual and unconnected.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यत् तु कृत्स्नवद् एकस्मिन् कार्ये सक्तम् अहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवद् अल्पं च तत् तामसम् उदाहृतम् ॥२२॥

और जिस मूर्खतापूर्ण, तुच्छ और बेकार ज्ञान के द्वारा मनुष्य शरीर को ही सब कुछ मानकर उसमें आसक्त हो जाता है, वह ज्ञान तामसिक है. (१८.२२)

BG 18.22: That knowledge is said to be in the mode of ignorance where one is engrossed in a fragmental concept as if it encompasses the whole, and which is neither grounded in reason nor based on the truth.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २३ - **नियतं सङ्ग रहितम्, रागद्वेषतः कृतम् ।**
अफल प्रेप्सुना कर्म, तत्तत्सात्त्विक मुच्यते ॥

जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया हुआ और करतापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया हो - वह सात्त्विक कहा जाता है ।

Action which is ordained by the scriptures that is performed without a sense of doership and without attachment or aversion by one, who seeks no reward, is said to be Sattivik karma (of the nature of goodness, virtuous, sincerity, genuineness, honesty).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद् राजसम् उदाहृतम् ॥२४॥

जो कर्म फल की कामना वाले, अहंकारी मनुष्य द्वारा बहुत परिश्रम से किया जाता है, वह राजसिक कहा गया है. (१८.२४)

BG 18.24: Action that is prompted by selfish desire, enacted with pride, and full of stress, is in the nature of passion.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अनुबन्धं क्षयं हिंसाम् अनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहाद् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसम् उच्यते ॥२५॥

जो कर्म परिणाम, अपनी हानि, परपीड़ा और अपना सामर्थ्य को न विचारकर केवल भ्रमवश किया जाता है, वह कर्म तामसिक कहलाता है. (१८.२५)

BG 18.25: That action is declared to be in the mode of ignorance, which is begun out of delusion, without thought to one’s own ability, and disregarding consequences, loss, and injury to others.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर् निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

जो कर्ता आसक्ति और अहंकार से रहित तथा धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य की

सफलता और असफलता में निर्विकार रहता है, वह कर्ता सात्त्विक कहा जाता है. (१८.२६)

BG 18.26: The performer is said to be in the mode of goodness, when he or she is free from egotism and attachment, endowed with enthusiasm and determination, and equanimous in success and failure.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

रागी कर्मफलप्रेप्सुर् लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

राग-द्वेष से युक्त, कर्मफल का इच्छुक, लोभी तथा दूसरों को कष्ट देने वाला, अपवित्र विचार वाला और हर्ष-शोक से युक्त कर्ता राजसिक कहा जाता है. (१८.२७)

BG 18.27: The performer is considered in the mode of passion when he or she craves the fruits of the work, is covetous, violent-natured, impure, and moved by joy and sorrow.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

अयुक्त, असभ्य, हठी, धूर्त, द्वेषी, आलसी, उदास और दीर्घसूत्री कर्ता तामसिक कहा जाता है. (१८.२८)

BG 18.28: A performer in the mode of ignorance is one who is undisciplined, vulgar, stubborn, deceitful, slothful, despondent, and a procrastinator.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

बुद्धेर् भेदं धृतेश् चैव गुणतस् त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानम् अशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

हे अर्जुन, अब तुम मुझ से गुणों के अनुसार बुद्धि के और संकल्प के भी तीन भेद पूर्णरूप से अलग-अलग सुनो. (१८.२९)

BG 18.29: Hear now, O Arjun, of the distinctions of intellect and determination, according to the three modes of material nature, as I describe them in detail.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३० - **प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, कार्या कार्य भयाभये ।**
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति, बुद्धि सा पार्थ सात्त्विकी ॥

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग को, भय और अभय को, तथा बन्धन और मोक्ष को यर्थाथ जानती है, वह बुद्धि सत्त्विकी है । दोनो मार्गों को जानने का तत्पर्य संसार के सम्बन्ध विच्छेद से ही है ।

The intellect is said to be in the nature of goodness, when it understands what proper action is and what is improper action, what is duty and what is non-duty, what is to be feared and what is not to be feared, what is binding and what is liberating. Knowledge of the two paths (Pravriti & Nivriti), is only to renounce affinity with the world.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यया धर्मम् अधर्मं च कार्यं चाकार्यम् एव च ।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

हे पार्थ, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को ठीक तरह से नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसिक है. (१८.३१)

BG 18.31: The intellect is considered in the mode of passion when it is confused between righteousness and unrighteousness, and cannot distinguish between right and wrong conduct, O Parth.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अधर्मं धर्मम् इति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

हे अर्जुन, जो बुद्धि अज्ञान के कारण अधर्म को ही धर्म मान लेती है, इसी तरह सभी चीजों को उल्टा समझ लेती है, वह बुद्धि तामसिक है. (१८.३२)

BG 18.32: That intellect which is shrouded in darkness, imagining irreligion to be religion, and perceiving untruth to be the truth, is of the nature of ignorance, O Parth.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

जिस संकल्प के द्वारा केवल परमात्मा को ही जानने के ध्येय से मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह संकल्प सात्त्विक है. (१८.३३)

BG 18.33: The steadfast willpower that is developed through Yog, and which sustains the activities of the mind, the life-airs, and the senses, O Parth, is said to be determination in the mode of goodness.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

हे पृथानन्दन, फल की इच्छा वाला मनुष्य जिस संकल्प के द्वारा धर्म, अर्थ और काम को अत्यन्त आसक्ति पूर्वक धारण करता है, वह संकल्प राजसिक है. (१८.३४)

BG 18.34: The steadfast willpower by which one holds on to duty, pleasures, and wealth, out of attachment and desire for rewards, O Arjun, is determination in the mode of passion.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदम् एव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

हे पार्थ, बुद्धिहीन मनुष्य जिस धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और लापरवाही को नहीं छोड़ता है, वह संकल्प तामसिक कहा जाता है. (१८.३५)

BG 18.35: That unintelligent resolve is said to be determination in the mode of ignorance, in which one does not give up dreaming, fearing, grieving, despair, and conceit.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३६, ३७ – सुखं त्विदानीं त्रिविधं, श्रृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र, दुःखान्तं च निगच्छति ॥
यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम् ।
ततसुखं सात्त्विकं प्रोक्तम, आत्मबुद्धि प्रसादजम् ॥

हे भरतश्रेष्ट! अब तीन प्रकार के सुख को भी तू मुझ से सुन । जिस सुख में साधक मनुष्य, भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और जिस से दुःखों के अन्त को प्राप्त हो जाता है, जो ऐसा सुख है, वह आरम्भ काल में यद्यपि

विष के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिये वह परमात्म-विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है ।

And now hear from me, O Arjun, of the three kinds of happiness in which the embodied soul rejoices and can even reach the end of all suffering.
That which seems like poison at first, but tastes like nectar in the end, is said to be happiness in the mode of goodness. It is generated by the pure intellect that is situated in self-knowledge.

परिशिष्ट भाव - विवेक को महत्व न देने के करण सात्विक सुख आरम्भ में विष की तरह दीखता है । राजस मनुष्य विवेक आदर नहीं देता । अतः सात्विक सुख का आरम्भ में विष की तरह दीखना राजसपना है ।

Important Point- A Sattvik happiness appears like poison initially because a striver does not attach importance to discrimination. Therefore, appearance of the Sattivik happiness initially like poison is because of Rajogun.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत् तद् अग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषम् इव तत् सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

इन्द्रियों के भोग से उत्पन्न सुख को — जो भोग के समय तो अमृत के समान लगता है, परन्तु जिसका परिणाम विष की तरह होता है — राजसिक सुख कहा गया है. (५.२२ भी देखें) (१८.३८)

BG 18.38: Happiness is said to be in the mode of passion when it is derived from the contact of the senses with their objects. Such happiness is like nectar at first but poison at the end.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यद् अग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनम् आत्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत् तामसम् उदाहृतम् ॥३९॥

निद्रा, आलस्य और लापरवाही से उत्पन्न सुख को, जो भोगकाल में तथा परिणाम में भी मनुष्य को भ्रमित करने वाला होता है, तामसिक सुख कहा गया है. (१८.३९)

BG 18.39: That happiness which covers the nature of the self from beginning to end, and which is derived from sleep, indolence, and negligence, is said to be in the mode of ignorance.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

न तद् अस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर् मुक्तं यद् एभिः स्यात् त्रिभिर् गुणैः ॥४०॥

पृथ्वी पर अथवा स्वर्ग के देवताओं में कोई भी प्राणी प्रकृति के इन तीन गुणों से मुक्त होकर नहीं रह सकता है. (१८.४०)

BG 18.40: No living being on earth or the higher celestial abodes of this material realm is free from the influence of these three modes of nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४१ - **ब्राह्मणक्षत्रियविशां, शुद्राणां च परन्तप ।**
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणै ॥

हे परन्तप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुये तीनों गुनों के द्वारा विभक्त किये गये हैं ।

The duties of the Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, and Shudras—are distributed according to their qualities, in accordance with their *guṇas* (born of their ature).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४२ - **शमो दमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जवमेव च ।**
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥

मन का निग्रह करना, इन्द्रियों को वश में करना, धर्मपालन के लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतर से शुद्ध रहना, दूसरों के अपराध को क्षमा करना, शरीर-मनादि में सरलता रखना, वेद-शास्त्रादि का ज्ञान होना, यज्ञविधि को अनुभव में लाना और परमात्मा, वेदादि में आस्तिक का भाव रखना - ये सब-के-सब ही ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं ।

Serenity, control of the senses, austerity, purity, patience, integrity, forgiveness, uprightness, knowledge (wisdom), experience of the proper performance of sacrifice and belief in God and knowledge of Vedas and Shastras etc., These are the duties of a Brahmin, intrinsic to his nature.

परिशिष्ट भाव - वर्ण परमपरा ठीक हो तो यह गुण ब्राह्मण में ठीक होते हैं । परन्तु वर्ण संकर्ता आने पर ये गुण स्वभाविक नहीं होते हैं, इन में कमी आ जाती है ।

Important Point – If the Varan tradition has been properly followed, a Brahmin naturally possesses these qualities, But, if a hybrid is born viz., if there is an inter-mixture of casts, then the Brahmins don’t naturally possess these

qualities. There is deviation in those qualities.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४३ - **शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम् ।**
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजाके संचालन आदि की विशेष चतुरता तथा युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का भाव - ये सब-के-सब क्षत्रिये के स्वभाविक कर्म हैं ।

Heroism, radiance, firmness, resourcefulness (dexterity), not fleeing from battle, generosity and authoritative, are the natural duties of a Ksatriya (a member of the warrior class), inherent in his nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४४ - **कृषि गौरक्ष्य वानिज्यं, वैश्यकर्म स्वभावजम् ।**
परिचर्यात्मकं कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

खेती करना, गायोंकी रक्षा करना और वाणीजय व्यपार करना, ये सब-के-सब वैश्य के स्वभावि कर्म हैं तथा सेवा के क्षेत्र में हर तरह से सयोग देना शुद्र का स्वभाविक कर्म है ।

Agriculture, dairy farming (cow rearing), and commerce are the natural works. for those with the qualities of Vaishyas. Serving through work is the natural duty for those with the qualities of Shudras.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

स्वे स्वे कर्मण्य् अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच् छृणु ॥४५॥

मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धि को कैसे प्राप्त कर सकता है, उसे तुम मुझसे सुनो. (१८.४५)

BG 18.45: By fulfilling their duties, born of their innate qualities, human beings can attain perfection. Now hear from Me how one can become perfect by discharging one's prescribed duties.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यतः प्रवृत्तिर् भूतानां येन सर्वम् इदं ततम् ।
स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

जिस परब्रह्म परमात्मा से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, उसका अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है. (६.२७, १२.१० भी देखें) (१८.४६)

BG 18.46: By performing one's natural occupation, one worships the Creator from whom all living entities have come into being, and by whom the whole universe is pervaded. By such performance of work, a person easily attains perfection.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

अपना गुणरहित सहज और स्वाभाविक कार्य आत्मविकास के लिए दूसरे अच्छे अस्वाभाविक कार्य से श्रेयस्कर है, क्योंकि (निष्काम भाव से) अपना स्वभाविक कार्य करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता है. (३.३५ भी देखें) (१८.४७)

BG 18.47: It is better to do one's own *dharma*, even though imperfectly, than to do another's *dharma*, even though perfectly. By doing one's innate duties, a person does not incur sin.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषम् अपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निर् इवावृताः ॥४८॥

हे अर्जुन, अपने दोषयुक्त सहज स्वाभाविक कर्म का भी त्याग नहीं करना चाहिए; क्योंकि जैसे धुएं से अग्नि लिप्त होती है, वैसे ही सभी कर्म किसी-न-किसी दोष से युक्त होते हैं. (१८.४८)

BG 18.48: One should not abandon duties born of one's nature, even if one sees defects in them, O son of Kunti. Indeed, all endeavors are veiled by some evil, as fire is by smoke.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

आसक्ति रहित, इच्छा रहित और जितेन्द्रिय मनुष्य संन्यास (अर्थात् सकाम कर्मों के परित्याग) के द्वारा (कर्म के बन्धन से मुक्त होकर) परम नैष्कर्म्य-सिद्धि प्राप्त करता है. (१८.४६)

BG 18.49: Those whose intellect is unattached everywhere, who have mastered the mind, and are free from desires by the practice of renunciation, attain the highest perfection of freedom from action.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

हे कौन्तेय, नैष्कर्म्य-सिद्धि को प्राप्त हुआ साधक किस प्रकार तत्त्वज्ञान की परा निष्ठा — परमपुरुष — को प्राप्त होता है, उसे भी मुझसे संक्षेप में सुनो. (१८.५०)

BG 18.50: Hear from Me briefly, O Arjun, and I shall explain how one, who has attained perfection (of cessation of actions), can also attain Brahman by being firmly fixed in transcendental knowledge.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन् विषयांस् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

विशुद्ध बुद्धि से युक्त, मन के दृढ़ संकल्प द्वारा आत्मसंयम कर, शब्दादि विषयों को त्याग कर, राग-द्वेष से रहित होकर, एकान्त में रहकर, हल्का, सात्त्विक और नियमित भोजन करके, अपने वाणी, कर्मेन्द्रियों और मन को संयत कर, परमात्मा के ध्यान में सदैव लगा हुआ, दृढ़ वैराग्य को प्राप्त, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और स्वामित्व को त्यागकर, ममत्वभाव से रहित और शान्त मनुष्य परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के योग्य बन जाता है. (१८.५१-५३)

BG 18.51-53: One becomes fit to attain **Brahm** when he or she possesses a purified intellect and firmly restrains the senses, abandoning sound and other objects of the senses, casting aside attraction and aversion. Such a person relishes solitude, eats lightly, controls body, mind, and speech, is ever engaged in meditation, and practices dispassion. Free from egotism, violence, arrogance, desire, possessiveness of property, and selfishness, such a person, situated in tranquility, is fit for union with Brahman (i.e., realization of the Absolute Truth as Brahm).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

उपरोक्त ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त, प्रसन्न चित्त वाला साधक न तो किसी के लिये शोक करता है, न किसी वस्तु की इच्छा ही करता है. ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है. (१८.५४)

BG 18.54: One situated in the transcendental Brahman realization becomes mentally serene, neither grieving nor desiring. Being equitably disposed toward all living beings, such a yogi attains supreme devotion unto Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यश् चास्मि तत्त्वतः ।
ततो माम् तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

श्रद्धा और भक्ति (अर्थात् पराभक्ति) के द्वारा ही मैं तत्त्व से जाना जा सकता हूं कि मैं कौन हूं और क्या हूं. मुझे तत्त्व से जानने के पश्चात् तत्काल ही मनुष्य मुझ में प्रवेश कर (मत्स्वरूप बन) जाता है. (५.१६ भी देखें) (१८.५५)

BG 18.55: Only by loving devotion to Me does one come to know who I am in Truth. Then, having come to know Me, My devotee enters into full consciousness of Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सर्वकर्माण्य् अपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादाद् अवाप्नोति शाश्वतं पदम् अव्ययम् ॥५६॥

मेरा आश्रय लेने वाला (कर्मयोगी भक्त) सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त करता है. (१८.५६)

BG 18.56: My devotees, though performing all kinds of actions, take full refuge in Me. By My grace, they attain the eternal and imperishable abode.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगम् उपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

समस्त कर्मों को श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मुझे अर्पण कर, मुझे अपना परम लक्ष्य मानकर मुझ पर ही भरोसा रख तथा निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझ में ही चित्त लगा. (१८.५७)

BG 18.57: Dedicate your every activity to Me, making Me your supreme goal. Taking shelter of the Yog of the intellect, keep your consciousness absorbed in Me always.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि ।
अथ चेत् त्वम् अहंकारान् न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

मुझ में चित्त लगा कर तुम मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को पार कर जाओगे और यदि तुम अहंकारवश मेरे इस उपदेश को नहीं सुनोगे, तो तुम्हारा पतन होगा. (१८.५८)

BG 18.58: If you always remember Me, by My grace you shall overcome all obstacles and difficulties. But if, due to pride, you do not listen to My advice, you will perish.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यद् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस् ते प्रकृतिस् त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

यदि अहंकारवश तुम ऐसा सोच रहे हो कि मैं यह युद्ध नहीं करूंगा, तो तुम्हारा ऐसा सोचना मिथ्या है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव तुम्हें बलात् युद्ध में लगा देगा. (१८.५९)

BG 18.59: If, motivated by pride, you think, “I shall not fight,” your decision will be in vain. Your own nature will compel you to fight.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन् मोहात् करिष्यस्य् अवशोऽपि तत् ॥६०॥

हे अर्जुन, तुम अपने स्वाभाविक कर्म (के संस्काररूपी बन्धनों) से बन्धे हो, अतः भ्रमवश जिस काम को तुम नहीं करना चाहते हो, उसे भी तुम विवश होकर करोगे. (१८.६०)

BG 18.60: O Arjun, that action which out of delusion you do not wish to do, you will be driven to do it by your own inclination, born of your own material nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६१ - **ईश्वर सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥

हे अर्जुन! ईश्वर सम्पूण प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूण प्राणियों को उनके स्वभाव के अनुसार भ्रमण कराता रहता है ।

The Supreme Lord dwells in the hearts of all living beings, O Arjun. According to their nature, he directs the wanderings of the souls, who are seated on a machine made of the material energy.

विशेष बात : एक विशेष बात ध्यान देने की है, कि स्वभाव को सुधारने में और बिगाड़ने में सभी मनुष्य स्वतन्त्र हैं, कोई भी परतन्त्र नहीं है । परन्तु पशु, पक्षी, देवता आदि जितने भी मनुष्येतर प्राणी हैं, उनमें अपने स्वभाव को सुधारने का न अधिकार है और न स्वतन्त्रता ही है ।
मनुष्य शरीर अपना उद्धार करने के लिये ही मिला है, इसलिये इस में अपने स्वभाव को सुधारने का पूरा अधिकार है, पूरी स्वतन्त्रता है ।

Important Point – A man is free in purifying his nature or in sullying it, while other creatures such as birds, beasts and even the Devtas (*Demi-Gods) are not free in improving their nature. The Lord, by His grace, has bestowed upon us this human body, so that we may attain salvation or liberation from the life and death cycle. So, a man should attain it by improving his nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६२ - **तमेव शरणं गच्छ, सर्वभावेन भारत ।**
तत्प्रसादात्परां शान्तिं, स्थानं प्राप्यसि शाश्वतम् ॥

हे भरतवंशो में श्रेष्ठ अर्जुन ! तू सर्वभाव से उस ईश्वर की शरण में चला जा । उन की कृपा से तू परम शान्ति (संसार से सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायेगा ।

Surrender exclusively unto him (God) with your whole being, O Bharat. By his grace, you will attain perfect peace and the eternal abode.

परिशिष्ट भाव - जीव ईश्वर का ही अंश है, इसलिये भगवान् ईश्वर की ही शरण में जाने को कहते है । ईश्वर के शरण में होने से अहंकार नहीं रहता । जब तक जीव ईश्वर के शरण में नहीं होता, तभी तक वह प्रकृति के वश में रहता है । वह जितना-जितना जड़ता की ओर जाता है, उतनी-उतनी असुरी सम्पति आती है और जितना-जितना चिन्मैता की ओर जाता है, उतनी-उतनी दैवी सम्पति आती है ।

Important Point - The soul is a fragment only of God. Therefore, Lord Krishna exhorts Arjun to seek refuge in only God. When a man takes refuge in God, he gets rid of egoism. So long as a man (the self) is not under the control (refuge) of God, he is swayed by 'prakriti' (nature). The more he inclines towards the inert matter (non-self) the more he is endowed with the demoniac nature. However, the more he is inclined towards pure consciousness, the more he is endowed with the divine nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इति ते ज्ञानम् आख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतद् अशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

मैंने गुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान तुमसे कहा है. अब इस पर अच्छी तरह से विचार करने के बाद तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो. (१८.६३)

BG 18.63: Thus, I have explained to you this knowledge that is more secret than all secrets. Ponder over it deeply, and then do as you wish.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढम् इति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

मेरे इस समस्त गुह्यों में गुह्यतम परम उपदेश को तुम एक बार फिर सुनो. तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हारे हित की बात कहूंगा. (१८.६४)

BG 18.64: Hear again My supreme instruction, the most confidential of all knowledge. I am revealing this for your benefit because you are very dear to Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
माम् एवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

तुम मुझ में अपना मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो. ऐसा करने से तुम मुझे अवश्य ही प्राप्त करोगे. मैं तुम्हें यह सत्य वचन देता हूं, क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो. (१८.६५)

BG 18.65: Always think of Me, be devoted to Me, worship Me, and offer obeisance to Me. Doing so, you will certainly come to Me. This is My pledge to you, for you are very dear to Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६६ - **सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।**
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सम्पूण धर्मों का आश्रय छोड़ कर तू केवल मेरी शरण में आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर ।

Abandoning dependence on all duties and all varieties of *dharmas,* simply surrender unto me and take refuge in me alone. I shall liberate you from all sinful reactions; do not grieve and fear no more.

विशेष बात -यहाँ सम्पूर्ण धर्मों का अर्थ है कि 'सम्पूर्ण कर्मों को भगवान् को अर्पण करना' ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । अर्थात् सम्पूर्ण धर्मों के आश्रय का त्याग करने और केवल भगवान् का आश्रय लेना । **भगवान् का कहने का अभिप्राय ये है कि "तू धर्म के निर्णय का भार मेरे पर छोड़ दे - यही 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' का तात्पर्य है ।**
गोस्वामीजी का एक चौपाई : सेवक सुत पति मातु भरोसे, रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ।

Important Point – When Krishna says to abandon all duties, he means that all duties must be offered to Him. By doing so, a striver, will not depend on duties. but will depend on God. By saying "Sarwadharmanyeparityaj," he asks Arjun to entrust him with the task of taking the decision, about his duty, without being confused about it. 'Goswami Tulsidas Ji said – Sewak sut pitu maatu bharose, rahayeen asoch banai prabhu pose," i.e., a servant and a baby are totally reliant on their master /mother. If you look at a baby, he is totally dependent on her mother. She knows that no matter what, her mum will look after her in all odds or circumstances.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

(गीता के) इस गुह्यतम ज्ञान को तपरहित और भक्तिरहित व्यक्तियों को, अथवा जो इसे सुनना नहीं चाहते हों, अथवा जिन्हें मुझ में श्रद्धा न हो; उन लोगों से कभी नहीं कहना चाहिए. (१८.६७)

BG 18.67: This instruction should never be explained to those who are not austere or to those who are not devoted. It should also not be spoken to those who are averse to listening (to spiritual topics), and especially not to those who are envious of Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६८ - य इमं परमं गुह्यं, मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा, मामेवैष्यत्यसंशयः ॥

मुझ में पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा - इस में कोई सन्देह नहीं है ।

He who with supreme devotion to me, teaches this most supreme secret (Bhagvat Gita - confidential knowledge) to my devotees, performs the greatest act of love. They will come to me without doubt.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६९ - न च तस्मान्मनुष्येषु, कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥.

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डलपर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं ।

There is none among human who does more loving service to me then He, nor shall there be another on earth, dearer to me than him.

परिशिष्ट भाव - गीता की शिक्षा से मनुष्यमात्र का प्रत्येक परिस्थिति में सुगमता से कल्याण हो सकता है, इस लिये भगवान् इस के प्रचार की विशेष महीमा कहते हैं । गीता ने युद्ध जैसी परिस्थिति में भी कल्याण होने की बात कही है - **'सुख-दुखे समय कृत्वा..." (२-३६) , 'यत्करोषि यदश्नासि यजुहोषि ददासीय.." (९-२७), ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा (५-१०)** । जब युद्ध जैसी परिस्थिति (घोर कर्म) में भी कल्यान हो सकता है, तो फिर अन्य परिस्थिति में कैसे नहीं होगा ? जो मुष्य भगवान् का प्यारा हो जाता है, उसको कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग - तीनों योग प्राप्त हो जाते हैं ।

Important Point - The gospel of the Gita can lead every person under every circumstance to salvation. Therefore, the Lord mentions the special glory of its sermoning or propagation. The Gita declares that even a warrior, while. fighting in the war, can attain salvation by treating pleasure and pain alike. When even such a circumstance (horrid actions) as war can lead to salvation, then how will other circumstances not lead to salvation.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७० - **अध्येष्यते च य इमं, धर्म्यं सम्वादमावयोः ।**
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः, स्यामिति में मति ॥

जो मनुष्य हम दोनो के इस धर्ममय सम्वाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है ।

And I proclaim that those who study this sacred dialogue of ours will worship me (with their intellect) through the sacrifice of knowledge i.e., GYAN; such is my view.

परिशिष्ट भाव - भगवान् ज्ञान यज्ञ को द्रव्यमय यज्ञ से श्रेष्ठ मानते हैं - (श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप : ४-३३) । जब गीता के अध्ययन का इसना माहात्म्य है, तो फिर उस के अनुसार आचरण करने का तो कहना ही क्या ?

Important Point – The Lord regards the knowledge sacrifice as superior to material sacrifice (Gita Chap 4/33). When there is so much glory of the study of Gita, then how much glory should be thereof translating the gospel of the Gita into practice.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रद्धावान् अनसूयश्च शृणुयाद् अपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल् लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

तथा जो श्रद्धा पूर्वक —— बिना आलोचना किये —— इसे सुनेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुण्यवान लोगों के शुभ लोकों को प्राप्त करेगा. (१८.७१)

BG 18.71: Even those who only listen to this knowledge with faith and without envy will be liberated from sins and attain the auspicious abodes where the pious dwell.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कच्चिद् एतच् छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिद् अज्ञानसंमोहः प्रनष्टस् ते धनंजय ॥७२॥

हे पार्थ, क्या तुमने एकाग्रचित्त होकर इसे सुना? और हे धनंजय, क्या तुम्हारा अज्ञान जनित भ्रम पूर्णरूप से नष्ट हुआ? (१८.७२)

BG 18.72: O Arjun, have you heard Me with a concentrated mind? Have your ignorance and delusion been destroyed?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः स्मृतिर् लब्धा त्वत्प्रसादान् मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

अर्जुन बोले— हे अच्युत, आपकी कृपा से मेरा भ्रम दूर हो गया है और मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है. अब मैं संशयरहित हो गया हूं और मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा. (१८.७३)

BG 18.73: Arjun said: O Infallible One, by Your grace my illusion has been dispelled, and I am situated in knowledge. I am now free from doubts, and I shall act according to Your instructions.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

संजय उवाच
इत्य् अहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादम् इमम् अश्रौषम् अद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

संजय बोले— इस प्रकार मैंने भगवान श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुन का यह अद्भुत और रोमांचकारी संवाद सुना. (१८.७४)

BG 18.74: Sanjay said: Thus, have I heard this wonderful conversation between Shree Krishna, the Son of Vasudev, and Arjun, the noble-hearted son of Pritha. So thrilling is the message that my hair is standing on end.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

व्यासप्रसादाच् छ्रुतवान् एतद् गुह्यम् अहं परम् ।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम् ॥७५॥

व्यास जी की कृपा से (दिव्य दृष्टि पाकर) मैंने इस परम गुह्य ज्ञान को (अर्जुन से कहते हुए) साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है. (१८.७५)

BG 18.75: By the grace of Veda Vyas, I have heard this supreme and most secret Yog from the Lord of Yog, Shree Krishna Himself.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादम् इमम् अद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर् मुहुः ॥७६॥

हे राजन्, भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र (अर्थात् कल्याणकारी) और अद्भुत संवाद को बार-बार स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित होता हूं. (१८.७६)

BG 18.76: As I repeatedly recall this astonishing and wonderful dialogue between the Supreme Lord Shree Krishna and Arjun, O King, I rejoice again and again.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

तच् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपम् अत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

हे राजन्, श्रीहरि के अत्यन्त अद्भुत रूप को भी बार-बार स्मरण करके मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित होता हूं. (१८.७७)

BG 18.77: And remembering that most astonishing and wonderful cosmic form of Lord Krishna, great is my astonishment, and I am thrilled with joy over and over again.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७८ - संजय उवाच

यत्र योगेश्वरः कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूति, ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है - ऐसा मेरा मत है ।

Sanjay said to Dhritrasta - "Wherever there is Shree Krishna, the Lord of all Yog, and wherever there is Arjun, the supreme archer, there will also certainly be unending opulence, victory, prosperity, and righteousness. Of this, I am certain."

वास्तव में श्री, विजय, विभूति और ध्रुआ नीति - ये सब गुण भगवान् में और अर्जुन में हरदम विद्यमान रहते है । तात्पर्य यह है कि जहाँ भगवान् और उनके अनन्य भक्त - ये दोनों रहेंगे, वहाँ अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त माधुर्य, अनन्त सौर्शील्य, अनन्त सौजन्य, अनन्त सौन्दर्य, आदि दिव्य गुन रहेंगे ।

In fact, the lesson we are being given is that wherever you will find the Supreme Lord and His unique or exclusive devotee, you will find presence of all divine traits such as prosperity, gracefulness, modesty, generosity, and beauty etc., in boundless quantity, in both of them.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अष्टादशोऽध्याय का सार

इस में सम्पूर्ण गीता का सार बतलाया गया है । इस में श्रीकृष्ण को ही सर्वोत्तम भगवत्-तत्त्व बतला कर पहले उन के प्रति शरणागति, पुनः नवधा भक्ति और अन्त में भावभक्ति का आश्रय ग्रहण कर उन के परमधाम में रसमयी सेवा की प्राप्तिरूप सर्वगुह्मतम उपदेश निर्धारित किया गया है ।

गीता दर्पण के अठारहवे अध्याय का तात्पर्य

मनुष्यमात्र के उद्धार के लिये उन की रुची, योगता और श्रद्धा के अनुसार तीन साधन बताये गये हैं - कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग (**शरणागति**) । इन में से किसी भी एक साधन में मनुष्य लग जाय तो उस का उद्धार हो जाता है ।

जो मनुष्य यज्ञ, तप और दान तथा नियत कर्तव्य कर्मों को आसक्ति और फलेच्छा का त्याग कर के करता है एवं जो कुशल-अकुशल कर्मों में राग-द्वेश नहीं रखता, वही वास्तव में त्यागी है । नियत कर्मों को करते हुये भी उस को पाप नहीं लगता और उसको कभी भी कर्म-फल प्राप्त नहीं होता । उस के सम्पूर्ण संशय-संदेह मिट जाते हैं और वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । **यह कर्मयोग है** ।

जो मनुष्य सात्त्विक ज्ञान, कर्म, बुद्धि, धृति और सुखको धारण कर के कर्तृव्य-भोक्तृत्व से रहित हो जाता है, वह अगर सम्पूर्ण प्राणियों को मार दे, तो भी उस को पाप नहीं लगता । अपने स्वरूप में स्तिथ होने पर उस को पराभक्ति की प्राप्ति हो जाती है और परमात्म-तत्त्व को यथार्थ जान कर उस में प्रविष्ट हो जाता है । **यह ज्ञानयोग है ।**

जो मनुष्य भगवान् के परायण हो कर सम्पूर्ण कर्मों को भगवान् को अर्पण करता है, वह भगवत्कृपा से सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं से तर जाता है । जो अपने सहित शरीर-मन-इन्द्रियों को भगवान् में ही लगा देता है, वह भगवान् को ही प्राप्त होता है । जो सम्पूर्ण धर्मों के आशय का त्याग कर के अनन्यभाव से केवल भगवान् के शरण हो जाता है, उस को भगवान् सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं । **यह भक्तियोग है** ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

Gita Essence in English – Chapter 18

For the salvation of human beings, three means have been suggested according to their interest, ability, and faith. These are Karmayog (action), Gyanyog (knowledge) and Bhaktiyog (devotion). If a person engages in any one of these means, he gets salvation.

The man who offers sacrifices, gives donation, involves in actions without the desire of its fruits, is equanimous in happiness and sorrow, is the true one who has renounced. Despite performing daily activities, he is free from all sins. All his doubts disappear, and he becomes established in his true form. This is what is termed as "**Karmyog**" i.e., **Selfless actions**.

One who possess moral knowledge, takes moral actions, is calm and collected, and has renounced the worldly material desires, does not incur sins even if he kills someone. When he is situated in his own form, he attains supreme devotion and after knowing the true essence of God, he enters into it. This is what is termed as "**Gyan Yoga**" (i.e., **Yoga of Knowledge**).

The person who surrenders himself to God and dedicates all his deeds to God, gets overcome by all the obstacles by the grace of God. One who devotes his body, mind, and senses to God alone, attains God. One who renounces the meaning and their benefits of all the world related virtuous deeds and surrenders himself to God with full devotion, God frees him from all sins. This is what is called "**Bhakti Yoga**" i.e., **absolute Devotion to God**.

ॐ

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवतगीतासूपरिष्त्सु ब्रह्मविद्यां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मौक्षसंन्यासनयोगो नामाष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

हरि ॐ तत सत